

श्रीमद्भागवत 1.16: राजा परीक्षित और कलियुग

11 September 2026

🙏 पाठ से पहले एक निवेदन

श्रीमद्भागवत महापुराण के ये अध्यायवार सार गीता प्रेस भागवत को मुख्य आधार मानकर तैयार किए गए हैं। ये भागवत के अध्ययन में सहायक हैं, मूल ग्रंथ का स्थान नहीं ले सकते।

अध्ययन का मुख्य और अनुशंसित मार्ग गीता प्रेस की भागवत पुस्तक से सीधा पाठ है। यात्रा में, घर से दूर, या जब पुस्तक पास न हो, तब निरंतर अध्ययन, पुनरावृत्ति और समझ के लिए इन सारों का सहारा लिया जा सकता है।

🙏 पाठ से पहले एक निवेदन

श्रीमद्भागवत महापुराण के ये अध्यायवार सार गीता प्रेस भागवत को मुख्य आधार मानकर तैयार किए गए हैं। ये भागवत के अध्ययन में सहायक हैं, मूल ग्रंथ का स्थान नहीं ले सकते।

अध्ययन का मुख्य और अनुशंसित मार्ग गीता प्रेस की भागवत पुस्तक से सीधा पाठ है। यात्रा में, घर से दूर, या जब पुस्तक पास न हो, तब निरंतर अध्ययन, पुनरावृत्ति और समझ के लिए इन सारों का सहारा लिया जा सकता है।



ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

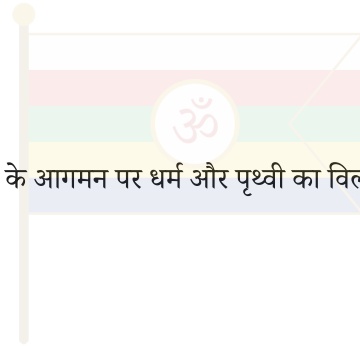
ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

भगवान श्रीकृष्ण के इस मर्त्यलोक से अन्तर्धान हो जाने पर संसार एक नए और अन्धकारमय युग में प्रवेश करता है। फिर भी धर्म का प्रकाश एक साथ नहीं बुझता। श्रीमद्भागवत के इस अध्याय में परमभक्त सम्राट परीक्षित पृथ्वी की रक्षा के लिए उठ खड़े होते हैं, और हमें एक अत्यन्त कोमल दृश्य के दर्शन होते हैं — धर्म और पृथ्वी माता, युग की सन्ध्यावेला में खड़े होकर, अपने प्रस्थान कर चुके प्रभु का एक साथ स्मरण करते हुए। यह अध्याय बताता है कि एक भक्त किस प्रकार शासन करता है, धर्म किस प्रकार क्षीण होता है, और श्रीकृष्ण का स्मरण किस प्रकार वह एकमात्र आश्रय है जो कभी नहीं छूटता।

अध्याय परिचय

- ग्रन्थ: श्रीमद्भागवत महापुराण (भागवत पुराण)
- स्कन्ध: प्रथम
- अध्याय: सोलहवाँ
- अध्याय शीर्षक: राजा परीक्षित को कलियुग की प्राप्ति कैसे हुई
- मुख्य वक्ता: सूत गोस्वामी (उग्रश्रवा)
- मुख्य श्रोता: नैमिषारण्य में शौनक आदि ऋषिगण
- अन्तःसंवाद: धर्म (वृषभ रूप में) और पृथ्वी माता (धरणी, गौ रूप में)
- मुख्य विषय: राजा परीक्षित का धर्ममय राज्य एवं दिग्विजय, तथा कलियुग के आगमन पर धर्म और पृथ्वी का विलाप
- मुख्य श्लोक-क्रम: भा. 1.16.1-36
- प्रमुख संस्करण: गीता प्रेस



पूर्व अध्याय का सन्दर्भ

पन्द्रहवें अध्याय में पाण्डवों ने यह जानकर कि भगवान श्रीकृष्ण अपनी पृथ्वी-लीला समाप्त कर अपने नित्य धाम को प्रस्थान कर गए हैं, अपने राज्य का त्याग कर महाप्रस्थान के उत्तर-मार्ग पर प्रस्थान किया। जाने से पूर्व सम्राट युधिष्ठिर ने हस्तिनापुर में अपने पौत्र परीक्षित को पृथ्वी का सम्राट और मथुरा में वज्र को शासक नियुक्त किया। जिस दिन भगवान ने संसार से विदा ली, उसी दिन कलियुग ने चुपचाप प्रवेश किया। इसी परिवर्तित संसार में अब राजा परीक्षित आगे आते हैं।

एक भक्त का राज्याभिषेक

सूत गोस्वामी ऋषियों को यह पवित्र इतिहास सुनाते रहते हैं। पाण्डवों के महाप्रस्थान के पश्चात राजा परीक्षित — भगवान के परमभक्त — ने पृथ्वी पर ठीक वैसे ही शासन किया जैसा श्रेष्ठ ब्राह्मणों ने उन्हें परामर्श दिया, और उनके जन्मकाल में निपुण ज्योतिषियों द्वारा कही गई समस्त उदात्त विशेषताओं को अपने आचरण में उतार दिया।

सूत उवाच ततः परीक्षिद् द्विजवर्यशिक्षया महीं महाभागवतः शशास ह । यथा हि सूत्यामभिजातकोविदाः समादिशन् विप्र महद्गुणस्तथा ॥ १ ॥

sūta uvāca / tataḥ parīkṣid dvija-varya-śikṣayā / mahīm mahā-bhāgavataḥ śaśāsa ha / yathā hi sūtyām abhijāta-kovidāḥ / samādiśan vipra mahad-guṇas tathā

अर्थ: सूत जी बोले — तत्पश्चात् परमभक्त परीक्षित ने श्रेष्ठ ब्राह्मणों के मार्गदर्शन में पृथ्वी पर शासन किया, और वे समस्त उत्तम गुण प्रकट किए जिनकी भविष्यवाणी विद्वान् ज्योतिषियों ने उनके जन्म के समय की थी। (भा. 1.16.1)

उन्होंने उत्तरा-पुत्री इरावती से विवाह किया और उनसे जनमेजय आदि चार पुत्र उत्पन्न किए। शरद्वान् के पुत्र कृप को अपना गुरु बनाकर उन्होंने गंगा के तट पर प्रचुर दक्षिणा के साथ तीन अश्वमेध यज्ञ किए — ऐसे पवित्र यज्ञ कि देवता प्रकट होकर सबके देखते-देखते आहुतियाँ स्वीकार करते थे।



गुरु कृप के मार्गदर्शन में राजा परीक्षित गंगा तट पर तीन अश्वमेध यज्ञ करते हैं (भा. 1.16.3)।

कलियुग का छद्मवेश

अपनी दिग्विजय के क्रम में कहीं वीर राजा को एक चौंका देने वाला दृश्य दिखाई दिया: एक नीच व्यक्ति, राजा के वेश में परन्तु आचरण से शूद्र, एक गौ और एक बैल को अपने पैर से निर्दयतापूर्वक मार रहा था। यह राजवेश धारण किए हुए साक्षात् कलियुग का स्वरूप था। अपने श्रेष्ठ बल से परीक्षित ने उसे पकड़ कर दण्डित किया।

निजग्राहौजसा वीरः कलिं दिग्विजये क्वचित् । नृपलिङ्गधरं शूद्रं घ्नन्तं गोमिथुनं पदा ॥ ४ ॥

nijagrāhaujasā vīraḥ / kaliṁ digvijaye kvacit / nṛpa-liṅga-dharaṁ śūdraṁ / ghnantaṁ go-mithunaṁ padā

अर्थ: दिग्विजय के समय वीर परीक्षित ने कलि को बलपूर्वक पकड़ लिया, जो राजा के चिह्न धारण किए हुए किन्तु हृदय से शूद्र था और एक गौ तथा बैल को पैर से मार रहा था। (भा. 1.16.4)



राजवेश में किन्तु गौ और बैल को मारते व्यक्ति को देखकर राजा परीक्षित कलियुग के छद्म स्वरूप को दण्डित करते हैं (भा. 1.16.4)।

शौनक का प्रश्न

यह सुनकर शौनक एक गूढ़ प्रश्न करते हैं: राजा ने कलि को केवल दण्डित क्यों किया, उसे सर्वथा मारकर संसार को उसके प्रभाव से सदा के लिए मुक्त क्यों नहीं कर दिया? और वे सूत जी से केवल वही सुनाने की प्रार्थना करते हैं जो श्रीकृष्ण से अथवा उनके भक्त संतों से सम्बन्धित हो, क्योंकि शेष व्यर्थ की बातें इस क्षणभंगुर जीवन का अपव्यय हैं (भा. 1.16.5-6)। सूत जी उस सभा में कार्यरत एक गूढ़ योजना बताते हैं: ऋषियों ने स्वयं मृत्यु के देवता को भी आमन्त्रित किया था, ताकि अल्पायु मर्त्य मनुष्य श्रीहरि की अमृतमयी लीलाओं का श्रवण कर सकें।

क्षुद्रायुषां नृणामङ्ग मर्त्यानामृतमिच्छताम् । इहोपहूतो भगवान्मृत्युः शामित्रकर्मणि ॥ ७ ॥

kṣudrāyusaṁ nṛṇāṁ aṅga / martyānām ṛtam icchatām / ihopahūto bhagavān / mṛtyuḥ śāmitra-karmaṇi

अर्थ: सत्य के अभिलाषी अल्पायु मर्त्य मनुष्यों के कल्याण हेतु, यहाँ शान्ति-कर्म में साक्षात् मृत्युदेव को आमन्त्रित किया गया है। (भा. 1.16.7)

जब तक मृत्यु प्रतीक्षा में है, कोई नहीं मरेगा; और इस अवधि में लोग भगवान की लीलाओं का श्रवण एवं रसास्वादन कर सकते हैं। कितना खेदजनक है कि मन्दबुद्धि एवं अल्पायु अभागे मनुष्यों का जीवन रात्रि में निद्रा और दिन में व्यर्थ के कार्यों में बीत जाता है (भा. 1.16.9)।

परीक्षित की दिग्विजय

सूत जी राजा की कथा पुनः आरम्भ करते हैं। जब परीक्षित कुरुजांगल देश में निवास कर रहे थे, तब उन्होंने यह अप्रिय समाचार सुना कि कलि ने उनके संरक्षित राज्य में प्रवेश कर लिया है। धर्म-रक्षा के लिए सदा उत्सुक रहने वाले राजा ने तत्काल अपना धनुष उठा लिया।

सूत उवाच यदा परीक्षित् कुरुजाङ्गलेऽवसत् कलिं प्रविष्टं निजचक्रवर्तिते । निशम्य वार्तामनतिप्रियां ततः शरासनं संयुगशौण्डिराददे ॥ १० ॥

sūta uvāca / yadā parīkṣit kuru-jāṅgale 'vasat / kaliṁ praviṣṭaṁ nija-cakravartite / niśamya
vārtāṁ anati priyāṁ tataḥ / śārāsaṇaṁ saṁyuga-śauṇḍir ādade

अर्थ: सूत जी बोले — जब कुरुजांगल में निवास करते हुए परीक्षित ने यह अप्रिय समाचार सुना कि कलि उनके साम्राज्य में प्रवेश कर चुका है, तब उस युद्धप्रिय वीर ने अपना धनुष उठा लिया। (भा. 1.16.10)

अपने सुसज्जित रथ पर — जो श्याम अश्वों से जुता था और जिस पर सिंह के चिह्न वाली ध्वजा फहरा रही थी — आरूढ़ होकर वे रथ, हाथी, अश्व और पैदल सेना से घिरे हुए, समस्त दिशाओं की विजय हेतु अपनी राजधानी से निकल पड़े।

स्वलङ्कृतं श्यामतुरङ्गयोजितं रथं मृगेन्द्रध्वजमाश्रितः पुरात् । वृतो रथाश्चद्विपत्तियुक्तया स्वसेनया दिग्विजयाय निर्गतः ॥ ११ ॥

svalaṅkṛtaṁ śyāma-turaṅga-yojitaṁ / rathaṁ mṛgendra-dhvajam āśritaḥ purāt / vṛto rathāśva-
dvipapatti-yuktayā / sva-senayā digvijayāya nirgataḥ

अर्थ: श्याम अश्वों से जुते, सिंह-चिह्नित ध्वजा वाले सुन्दर सुसज्जित रथ पर आरूढ़ होकर, रथ-अश्व-हाथी-पैदल सेना से घिरे हुए, वे दिग्विजय हेतु अपने नगर से निकल पड़े। (भा. 1.16.11)

भद्राश्व, केतुमाल, भारत, उत्तर के कुरु, किम्पुरुष आदि देशों को जीतकर उन्होंने उनसे कर लिया। जहाँ भी वे गए, उन्होंने जनता को अपने महान पूर्वजों — पाण्डवों — का यशोगान करते सुना, और उन गीतों में श्रीकृष्ण की महिमा सदा प्रकाशित होती थी।

श्रीकृष्ण की महिमा का श्रवण

यात्रा के दौरान राजा ने गर्भ में रहते हुए अश्वत्थामा के प्रज्वलित अस्त्र से अपनी चमत्कारिक रक्षा की कथा सुनी, तथा वृष्णियों और पृथा-पुत्रों के मध्य के स्नेहमय सम्बन्ध की भी। प्रसन्न होकर उदार सम्राट ने गायकों को बहुमूल्य वस्त्र और हार भेंट किए, उनके नेत्र आनन्द से विस्फारित थे। और जब उन्होंने सुना कि भगवान विष्णु ने पाण्डवों की किस प्रकार सेवा की — सारथि, मन्त्री, दूत, सखा और रात्रि-प्रहरी के रूप में, यहाँ तक कि युधिष्ठिर को प्रणाम कर सम्पूर्ण संसार को अपने प्रिय भक्तों के चरणों में नत करा दिया — तब उनके हृदय में भगवान के चरणकमलों के प्रति भक्ति जाग उठी और गहन होती गई।

सारथ्यपारषदसेवनसख्यदौत्य- वीरासनानुगमनस्तवनप्रणामान् । स्निग्धेषु पाण्डुषु जगत्प्रणतिं च विष्णो- भक्तिं करोति नृपतिश्चरणारविन्दे ॥ १६ ॥

sārathya-pāraśada-sevana-sakhya-dautya- / vīrāsanānugamana-stavana-praṇāmān / snigdheṣu
pāṇḍuṣu jagat-praṇatiṁ ca viṣṇor / bhaktiṁ karoti nṛ-patiś caraṇāravinde

अर्थ: यह सुनकर कि भगवान विष्णु ने पाण्डवों के प्रति स्नेहवश किस प्रकार सारथि, मन्त्री, सेवक, सखा, दूत और प्रहरी का कार्य किया, उनका अनुगमन और स्तवन किया, उन्हें प्रणाम किया, तथा सम्पूर्ण जगत को उनके चरणों में नत कराया — राजा के हृदय में भगवान के चरणकमलों के प्रति भक्ति उत्पन्न हो गई। (भा. 1.16.16)



श्रीकृष्ण की सेवा-लीला सुनते ही राजा परीक्षित की भक्ति जाग उठती है (भा. 1.16.14-16)।

एक विचित्र दृश्य: धर्म और पृथ्वी

जैसे-जैसे परीक्षित प्रतिदिन अपने पूर्वजों के पदचिह्नों पर चलते गए, उनकी सीमा के निकट ही एक विचित्र घटना घटी। धर्म, सद्गुण के देवता, एक बैल के रूप में केवल एक पैर पर लंगड़ाते हुए विचरण कर रहा था। उसने पृथ्वी माता को एक गौ के रूप में देखा — पीली, कान्तिहीन, और अपने बछड़े को खो चुकी माता के समान अश्रु बहाती हुई। उसके शोक से द्रवित होकर धर्म ने उससे प्रश्न किया।

धर्म: पदैकेन चरन् विच्छायामुपलभ्य गाम् । पृच्छति स्माश्रुवदनां विवत्सामिव मातरम् ॥ १८ ॥

dharmah padaikena caran / vicchāyām upalabhya gām / pṛcchati smāśru-vadanām / vivatsām iva mātaram

अर्थ: केवल एक पैर पर चलते हुए धर्म ने पृथ्वी को गौ के रूप में देखा, जो कान्तिहीन थी और बछड़े से बिछुड़ी माता के समान रो रही थी, और उसने उससे पूछा। (भा. 1.16.18)



एक पैर पर खड़े वृषभ रूप में धर्म रोती हुई गौ रूपी पृथ्वी माता से प्रश्न करते हैं (भा. 1.16.18)।

धर्म के करुणापूर्ण प्रश्न

एक पैर वाला वृषभ कोमलता से पूछता है कि क्या वह कुशल है, क्योंकि उसका मुख पीला है और हृदय गुप्त शोक से भारी है (भा. 1.16.19)। क्या वह उसके लिए शोक कर रही है, जो अब अपने तीन पैर खोकर केवल एक पर खड़ा है? अथवा क्या वह अपने लिए शोकाकुल है, यह जानकर कि अयोग्य जन उस पर शासन करेंगे; अथवा यज्ञभाग से वंचित देवताओं के लिए; अथवा अनावृष्टि से पीड़ित प्रजा के लिए (भा. 1.16.20)? क्या वह असुरक्षित स्त्रियों के लिए, निर्दयतापूर्वक सताए जाते बालकों के लिए, अयोग्य हाथों में पड़ी विद्या के लिए, अथवा ब्राह्मण-द्वेषी राजकुलों की सेवा में लगे श्रेष्ठ ब्राह्मणों के लिए शोक करती है (भा. 1.16.21)? क्या वह पतित क्षत्रियों और नष्ट राज्यों के लिए, अथवा खान-पान और विषय-भोग में मर्यादाहीन डूबी मानवता के लिए विलाप करती है (भा. 1.16.22)?

तत्पश्चात् धर्म अपने सबसे गहरे प्रश्न की ओर मुड़ते हैं।

यद्वाम्ब ते भूरिभरावतार- कृतावतारस्य हरेर्धरित्रि । अन्तर्हितस्य स्मरती विसृष्टा कर्माणि निर्वाणविलम्बितानि ॥ २३ ॥

yad vāmba te bhūri-bharāvatāra- / kṛtāvatārasya harer dharitri / antarhitasya smarati visṛṣṭā / karmāṇi nirvāṇa-vilambitāni

अर्थ: हे माता, क्या तुम उन हरि के कर्मों का स्मरण कर रही हो, जो केवल तुम्हारे विशाल भार को हरने के लिए ही श्रीकृष्ण के रूप में अवतरित हुए थे — जिनके यहाँ के समस्त कर्म इतने शुद्ध रूप से दिव्य थे कि वे मुक्ति के आनन्द को भी पीछे छोड़ देते हैं — और अब उनके अन्तर्धान हो जाने मात्र से तुम शोकमग्न हो? (भा. 1.16.23)

अथवा क्या सर्वजयी काल ने, जो बलवानों में भी बलवान है, चुपचाप वह समृद्धि हर ली है जिसे कभी देवता भी तुझमें सराहते थे (भा. 1.16.24)? प्रत्येक प्रश्न उदित होते कलियुग का एक चित्र है — और प्रत्येक न्यायाधीश की कठोरता से नहीं, अपितु पिता की कोमलता से पूछा गया है।

पृथ्वी को श्रीकृष्ण का स्मरण

पृथ्वी माता उत्तर देती है कि धर्म तो ज्ञानी हैं, वे उसके शोक का सच्चा कारण पहले से ही जानते हैं। जिस-जिस वस्तु को उसने महत्व दिया, वह सब एक ही आधार पर टिकी थी — स्वयं भगवान। यह उन्हीं की उपस्थिति के कारण था कि धर्म कभी संसार के सुख हेतु अपने चारों पैरों पर दृढ़ता से खड़ा था।

धरण्युवाच भवान् हि वेद तत्सर्वं यन्मां धर्मानुपृच्छसि । चतुर्भिर्वर्तसे येन पादैर्लोकसुखावहैः ॥ २५ ॥

dharaṇy uvāca / bhavān hi veda tat sarvaṁ / yan mām dharmānupṛcchasi / caturbhir vartase yena / pādair loka-sukhāvahaiḥ

अर्थ: पृथ्वी ने उत्तर दिया — हे पूज्य धर्म, आप जो कुछ मुझसे पूछते हैं, वह सब आप स्वयं जानते हैं। उन्हीं के कारण आप उन चार पैरों पर स्थित थे जो संसार को सुख देने वाले हैं। (भा. 1.16.25)

तत्पश्चात् वह भगवान के अनन्त गुणों का दीर्घ स्मरण करती है।

सत्यं शौचं दया क्षान्तिस्त्यागः सन्तोष आर्जवम् । शमो दमस्तपः साम्यं तितिक्षोपरतिः श्रुतम् ॥ २६ ॥

satyaṁ śaucaṁ dayā kṣāntis / tyāgaḥ santoṣa ārjavam / śamo damas tapaḥ sāmyaṁ / titikṣoparatiḥ śrutam

अर्थ: सत्य, शुचिता, दया, क्षमा, उदारता, सन्तोष, सरलता, स्थिर मन, इन्द्रिय-निग्रह, कर्तव्य-निष्ठा, मित्र-शत्रु में समभाव, हर अपराध की सहनशीलता, तथा शास्त्रों से प्राप्त ज्ञान — ये सब सदा उन्हीं में निवास करते हैं। (भा. 1.16.26)

वह उसी क्रम में ज्ञान और वैराग्य, ऐश्वर्य और शौर्य, प्रभाव और आन्तरिक बल, स्वाभाविक सौन्दर्य और अडिग धैर्य, कोमलता और अक्षय कीर्ति सहित उन असंख्य गुणों का नाम लेती है, जो क्षणभर भी उनसे विलग नहीं होते, चाहे अन्य कितने ही उन्हें पाने की कामना करें (भा. 1.16.27–29)। अब जब वे, जो समस्त गुणों के आगार और लक्ष्मी के नित्य आश्रय हैं, इस पृथ्वी पर अपनी लीला समेट चुके, तब वह केवल अपने लिए नहीं अपितु धर्म, देवताओं, ऋषियों और वर्णाश्रम-व्यवस्था का पालन करने वाले समस्त जनों के लिए भी शोक करती है (भा. 1.16.30–31)। वह यह भी स्मरण करती है कि स्वयं लक्ष्मी ने अपने कमल-निवास को त्याग कर उन्हीं के चरणों की सेवा स्वीकार की, और उन्हीं चरणों के चिह्नों ने कभी पृथ्वी को अलंकृत कर उसकी शोभा तीनों लोकों से बढ़ा दी थी (भा. 1.16.32–33)। और वह स्मरण करती है कि जब वह स्वयं असुर-हृदय राजाओं की सैकड़ों सेनाओं के भार से दबी थी, और धर्म भी क्षीण हो चुका था, तब उन दोनों का भार हरने के लिए ही पूर्णतः स्वतन्त्र भगवान ने यदुवंश में अवतार लिया (भा. 1.16.34)। वह पूछती है — कौन नारी उस परमपुरुष के वियोग को सह सकती है, जिनकी चितवन और मुस्कान ने कभी उसके अस्तित्व को रोमांचित कर दिया था (भा. 1.16.35)?



पृथ्वी माता श्रीकृष्ण के अनन्त गुणों का स्मरण करती हैं (भा. 1.16.25-30)।

परीक्षित सरस्वती तट पर पहुँचते हैं

जब पृथ्वी माता और धर्म परस्पर संवाद कर ही रहे थे, तभी राजर्षि परीक्षित सरस्वती नदी के उस तट पर पहुँचे जहाँ वह पूर्व की ओर बहती है। यहाँ यह अध्याय कोमलता से समाप्त होता है, जो आगे के अध्याय में राजा के कलि से निर्णायक सामना के द्वार पर खड़ा है।

तयोरेवं कथयतोः पृथिवीधर्मयोस्तदा । परीक्षिन्नाम राजर्षिः प्राप्तः प्राचीं सरस्वतीम् ॥ ३६ ॥

tayor evaṁ kathayatoḥ / pṛthivī-dharmayos tadā / parīkṣin nāma rājarṣiḥ / prāptaḥ prācīm sarasvatīm

अर्थ: जब पृथ्वी और धर्म इस प्रकार संवाद कर रहे थे, तभी परीक्षित नामक राजर्षि पूर्ववाहिनी सरस्वती के तट पर पहुँचे। (भा. 1.16.36)



राजर्षि परीक्षित पूर्ववाहिनी सरस्वती के तट पर पहुँचते हैं (भा. 1.16.36)।

इस अध्याय की प्रमुख शिक्षाएँ

1. सच्चा शासक अहंकार से नहीं, मार्गदर्शन से शासन करता है। परीक्षित ने “श्रेष्ठ ब्राह्मणों के मार्गदर्शन में” शासन किया (भा. 1.16.1)। अतुलनीय गुणों वाले सम्राट ने भी अपनी शक्ति को विवेक और धर्म के अधीन रखा। वास्तविक बल वही विनम्रता है जो मार्गदर्शन स्वीकार करती है।
2. निर्बल की रक्षा ही धर्म का हृदय है। जिस क्षण परीक्षित ने गौ और बैल को — पृथ्वी और धर्म के प्रतीक — प्रताड़ित होते देखा, उन्होंने तत्काल कार्य किया (भा. 1.16.4)। निर्बल की रक्षा करने वाली करुणा ही धर्म का जीवन्त रूप है।
3. मानव जीवन अमूल्य है और सहज ही व्यर्थ हो जाता है। मृत्यु को आमन्त्रित करना ताकि लोग हरि-लीला सुन सकें, और निद्रा एवं व्यर्थता में बीतते जीवन पर विलाप (भा. 1.16.7–9) हमें स्मरण कराते हैं कि हमारा यह संक्षिप्त काल प्रभु-स्मरण के लिए है।
4. श्रवण से भक्ति बढ़ती है। पाण्डवों के साथ भगवान के व्यवहार को सुनते ही परीक्षित का श्रीकृष्ण-प्रेम गहन हो गया (भा. 1.16.14–16)। श्रवण स्वयं में भक्ति का एक पूर्ण मार्ग है।
5. समस्त धर्म भगवान पर टिका है। पृथ्वी का उत्तर इस अध्याय का मूल सत्य प्रकट करता है: धर्म के चारों पैर और प्रत्येक श्रेष्ठ गुण श्रीकृष्ण द्वारा धारित हैं (भा. 1.16.25–29)। जब उनका स्मरण क्षीण होता है, तब धर्म स्वयं मुरझाने लगता है।
6. भगवान केवल भार हल्का करने के लिए अवतरित होते हैं। पृथ्वी से धर्म का प्रश्न स्मरण कराता है कि हरि क्यों आए थे — निपट अपनी माता का बोझ उतारने के लिए, न कि किसी और प्रयोजन से, और मुक्ति की तुलना में भी उनकी उपस्थिति कहीं अधिक मूल्यवान थी (भा. 1.16.23)। उनके अवतरण का कारण अनुग्रह है, शिकायत नहीं।

भाक्ते-चिन्तन

एक पैर पर खड़े बैल और रोती हुई गौ का चित्र, जो चले गए प्रभु की मृदु चर्चा करते हैं — इसमें एक गहन मार्मिकता है। यह उस प्रत्येक हृदय की पीड़ा है जिसने ईश्वर की निकटता जानी और अब उसकी दूरी अनुभव करता है। किन्तु देखिए, अपने शोक में पृथ्वी क्या करती है: वह स्मरण करती है। वह केवल हानि पर विलाप नहीं करती; वह एक-एक कर अपने प्रियतम के गुणों का बखान करती है। युग के इस अन्धकारतम मोड़ पर, अभाव के प्रति उसका उत्तर स्मरण है — और वही स्मरण एक प्रकार की उपस्थिति बन जाता है। यही इस अध्याय की मौन शिक्षा है। हम भी ऐसे युग में जीते हैं जहाँ धर्म लंगड़ाता प्रतीत होता है और संसार असावधान होता जाता है। हम सदा अपने जन्म के युग को नहीं बदल सकते। किन्तु हम पृथ्वी माता के समान चुन सकते हैं — अपने शोक को प्रभु के नाम और लीलाओं से भर देना, जब तक विरह प्रेम में और अभाव मिलन में न बदल जाए।

दैनिक भक्ति-अभ्यास

पृथ्वी माता का अनुकरण कीजिए। आज एक बार शान्त बैठकर भगवान के गुणों का धीरे-धीरे स्मरण कीजिए — उनकी करुणा, अपने भक्तों के प्रति उनकी निष्ठा, प्रेमियों की सेवा के लिए उनकी तत्परता। आप मृदुता से “ॐ नमो भगवते वासुदेवाय” का जप कर सकते हैं, प्रत्येक आवृत्ति को स्मरण का एक छोटा कर्म बनाते हुए। जब संसार की दशा को लेकर चिन्ता या निराशा उठे, तब उस भाव को, पृथ्वी माता के समान, श्रीकृष्ण के स्मरण में बदल दीजिए।

उपसंहार

प्रथम स्कन्ध का सोलहवाँ अध्याय हमें दो युगों का संगम दिखाता है। एक ओर राजा परीक्षित हैं — सिंहासन पर विराजमान भक्त, विवेकियों से निर्देशित, गौ और धर्म के रक्षक, जिनका हृदय श्रीकृष्ण की महिमा सुनते-सुनते भक्ति में द्रवित हो जाता है। दूसरी ओर नवागत कलियुग है, जिसकी छाया भगवान के प्रस्थान करते ही संसार पर पड़ जाती है। इन दोनों के मध्य, एक शान्त प्रान्तर में, धर्म और पृथ्वी माता एक साथ शोक और स्मरण करते हैं, यह सिखाते हुए कि जब ईश्वर दूर प्रतीत हो, तब स्मरण ही वह सेतु है जो शेष रहता है। अध्याय के अन्त में परीक्षित पवित्र सरस्वती तट पर पहुँचते हैं, और उनके कलि से सामने के लिए मंच सज जाता है। हमें यह आश्वासन शेष रहता है कि जब तक एक भी हृदय प्रभु का स्मरण करता है, तब तक धर्म का एक रक्षक है, और युग का अन्धकार कभी पूर्ण नहीं हो सकता।

श्रीमद्भागवत की यह दिव्य वाणी हमारे हृदयों में शुद्ध भक्ति का उदय करे।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

जय श्री माधव।

सन्दर्भ एवं आभार

प्रमुख संस्करण: गीता प्रेस, श्रीमद्भागवत महापुराण, प्रथम स्कन्ध, षोडश अध्याय, पृष्ठ 65–68।

यह लेख लेखक के अपने शब्दों में एक मौलिक, श्रद्धापूर्ण पुनर्कथन है। अध्ययन हेतु संक्षिप्त संस्कृत श्लोक उनके अर्थ सहित उद्धृत किए गए हैं। यह किसी प्रकाशक के अनुवाद या टीका का पुनरुत्पादन नहीं है। गीता प्रेस, भक्तिवेदान्त बुक ट्रस्ट अथवा इस्कॉन से किसी सम्बद्धता या समर्थन का संकेत नहीं है।

श्रीमद्भागवतम् विज्ञडम् • बिस्वा सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट पण्डित डॉ. श्री काशीनाथ मिश्र के आध्यात्मिक मार्गदर्शन एवं अनुशंसा के अनुरूप प्रस्तुत।

॥ हरि ॐ तत्सत् ॥

जय श्री माधव

ऑनलाइन पढ़ें: kalkiabatara.org/hi/blog-srimad-bhagavatam-canto-1-chapter-16-parikshit-age-of-kali-hi.html

श्रीमद्भागवतम् विज्ञडम् • कल्कि अवतार इंटरनेशनल • बिस्व सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट

